समकालीन लेखिकाओं के साहित्य में स्त्रीवाद

सं. डॉ. अमनदीप कौर

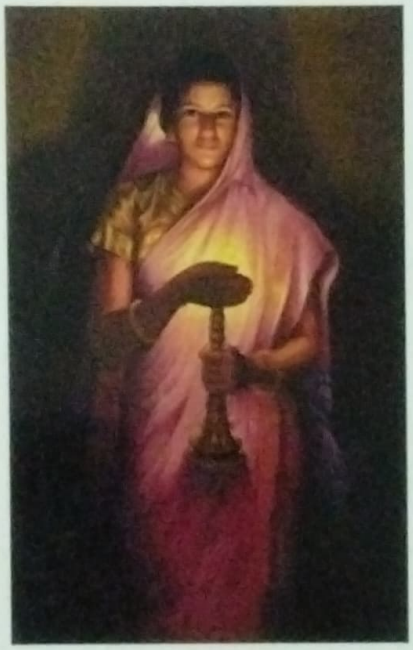
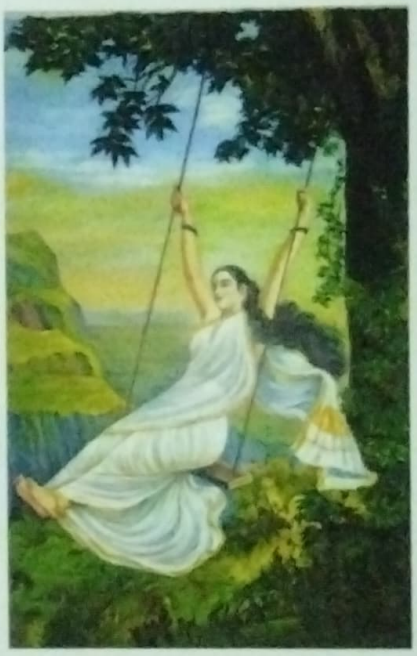
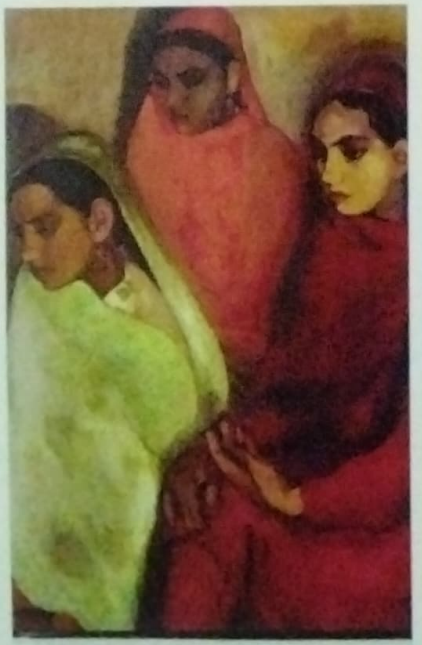

अनुक्रम

	सम्पादकीय	13
1.	समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद : सामाजिक एवं पारिवारिक सन्दर्भ में **डॉ. अमनदीप कौर**	17
2.	डॉ. माया दुबे की कविताओं में दार्शनिक चिंतन **डॉ. नरेश कुमार सिहाग**	27
3.	कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारीवाद **डॉ. गीतू खन्ना**	32
4.	समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद **डॉ. शक्ति बुद्धिराजा**	45
5.	समकालीन प्रवासी लेखिकाओं के साहित्य में स्त्रीवाद **डॉ. अंजू बाला**	51
6.	समकालीन लेखिकाओं के नाटकों में स्त्रीवाद **डॉ. विजय वाघ**	56
7.	समकालीन हिन्दी लेखिकाओं के काव्य में स्त्रीवाद **डॉ. सिद्धेश्वर काश्यप**	63
8.	समकालीन हिंदी महिला उपन्यासों में चित्रित बदलती स्त्री दृष्टि- विवाह और प्रेम के सन्दर्भ में **डॉ. सलमी सेबास्टियन**	82
9.	समकालीन कहानियों में नारी अंतर्द्वन्द्व **डॉ. षेमी जॉन**	88
10.	समकालीन लेखिकाओं की आत्मकथाओं में स्त्रीवाद **आस्था कच्छप**	91
11.	हिन्दी में महिलाओं का नाट्य लेखन **डॉ. अनीश के.एन.**	95

समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद

डॉ. शक्ति बुद्धिराजा
अस्सिटेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज,
संतपुरा यमुनानगर।

स्त्रीवाद, राजनैतिक आन्दोलनों, विचारधाराओं और सामाजिक आन्दोलनों की एक श्रेणी है, जो राजनैतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और लैंगिक समानता को परिभाषित करने, स्थापित करने और प्राप्त करने के एक लक्ष्य को सांझा करते हैं। इसमें महिलाओं के लिए पुरुषों के समान शैक्षिक और पेशेवर अवसर स्थापित करना शामिल है।[1]

समकालीन लेखिकाओं ने अपने साहित्य में इस बात की ओर संकेत किया कि नारी स्वयं को पुरुष के समकक्ष सृजन के क्षेत्र में स्थापित करने में सफल हो सकती है। स्त्री पुरुष के मध्य प्राकृतिक अंतर होने के बावजूद स्त्री अपनी मानसिक क्षमता से कला सृजन के क्षेत्र में अपना वर्चस्व बना सकती है। नारी के अनुभव और नारी का बोध पुरुष की तुलना में सर्वथा भिन्न हो सकते हैं। वह निजी अनुभवों को स्वाभाविकता से प्रस्तुत करती है। कल्पना और यर्थाथ में काफी अंतर होता है। स्त्री की स्थितियों को पुरुष की कल्पना द्वारा लिखना कुछ अलग ही होता है और उन स्थितियों को स्वयं स्त्री वर्णित करती है तो उसका प्रभाव और उसकी वास्तविकता पूर्णतः भिन्न होगी।

प्रभा खेतान लिखती हैं, कि "संस्कृति, संस्था और अभिजात स्त्रियों को अधिक मिली है किन्तु इन्हीं सुविधाओं ने कहीं उनकी चेतना को और अधिक जड़ीभूत बना दिया है अपनी कुलीनता के नशे में बेहोश है। भारतीय मर्यादा की गलबहियाँ उन्हें बार-बार व्यवस्था के सम्मोहन की तरफ धकेलती है तथा अपनी खुद की पीड़ा की नग्नता को देखने के बजाय वे पुरुषों द्वारा प्रदत्त पीड़ा के रस में पगी रहती है।"[2]

प्रभा खेतान के उपन्यास छिन्नमस्ता की नायिका प्रिया का पति प्रिया द्वारा

स्थापित व्यवसाय का विरोध करता है। वह उस पर अपना पौरुषी अहं थोपना चाहता है। पुरुष प्रधान समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला नरेन्द्र अपने पैसे के बल पर प्रिया से घर और बेटा भी छीन लेता है। उसे वस्तु समझकर भोगना चाहता है। परन्तु प्रिया महत्त्वाकांक्षी नारी है, जो पुरुषों की बिछाई सारी बाधाओं को पार करती हुई, सामाजिक सीढियाँ चढ़ती है, और नई ऊँचाईयों को छूती है। वह पीढ़ियों से पीड़ित नारी के दर्द को समझती है और नरेन्द्र को स्पष्ट कहती है, 'आपसी ईमानदारी, वफादारी, प्यार, समर्पण यह सब कुछ नहीं है। ये सारे शब्द भ्रम हैं। औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाएं ताकि युगों से चली आती आहुति की परम्परा को कायम रखे।'[3]

पुरुष अपने पौरुष और अहं पर आघात सहन नहीं करता और नारी से सदा अपेक्षित किया जाता है कि वह त्याग और समर्पण के नाम पर निरन्तर सहन करती जाए। हमारा समाज पुरुष के वासनात्मक क्षणों को भी क्षम्य मानता है और, नारी का प्यार जो पूजा के रुप में हो वह भी पाप है। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यास प्रतिध्वनियाँ में नायिका अचला का जीवन संघर्ष समाज के समक्ष एक कठोर प्रश्न प्रस्तुत करता है।

'जिस शरीर सुख को स्त्री पुरुष समान रुप से भोगते हैं, वह पुरुष के लिए मात्र आनन्द तक सीमित भी हो सकता है, स्त्री के लिए नाजायज मातृत्व अभिशाप तक बन सकता है। आपने कभी नाजायज शिशु के पिता को नदी या तालाब में डूब मरते या गले में फाँसी का फंदा लगाते देखा है .....यह विवशता तो नारी की ही होती है, प्रकृति की दी हुई, समाज की दी हुई।'[4]

स्त्रीवाद नारी के भीतर सुलगती वेदना, दमित अभिव्यक्ति, भावात्मक शोषण की टीस को अभिव्यक्त करता है। अपना हित अहित अगर पुरुष सोच सकता है तो यह अधिकार एक नारी का भी है। वह भी अपनी क्षमता के अनुरुप अपना जीवन अपनी मर्जी से जी सकती है। परन्तु पितृसत्तात्मक समाज को यह कतई मँजूर नहीं। उस समाज की गिद्ध दृष्टि हंसती मुस्कुराती जिंदगी को जीती अपना संसार स्वयं बसाती, चलाती स्त्री के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। परन्तु वह इस पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देती प्रतीत होती है। ममता कालिया के उपन्यास एक पत्नी के नोट्स के नायक संदीप और नायिका कविता का विवाह परस्पर सहमति से हुआ है। संदीप पुरुष प्रधान समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह स्वयं तो किसी भी सुन्दर स्त्री पर रीझ जाता है किंतु कविता के लिए सदैव शंकालु रहता है। संदीप की प्रवृत्ति में अक्कड़पन कूट कूट कर भरा हुआ है। वह अपनी माँ के आने की खुशी में कविता के साथ कॉलेज जाने का कार्यक्रम रद्द कर देता है। कविता ने मुँह फुलाकर कहा,

'अम्मा कोई पहली बार तो नहीं आ रही, ड्राइवर को भेज देना। .....क्रोध में चिढ़कर अकेला ही माँ को लेने चला जाता है। कविता की बातें रिकॉड कर माँ को सुना कर उसे अपमानित करता है।'[5] यह हमारे समाज की अपरिहार्य स्थिति है। आज की शिक्षित नारी प्रत्येक परिस्थिति से समझौता कर पुरुष के अधीन हो कर उसके वर्चस्व को स्वीकार करती है। साथ ही पुरुष की यह सोच घरेलु हिंसा और गृह विच्छेद या तलाक का कारण भी बनती है।

नारीवाद के अनुसार स्त्री और पुरुष के बीच असमानता का मुख्य कारण है, पितृसत्ता। यह एक ऐसी व्यवस्था होती है, जिसमें पुरुष को प्रधान समझा जाता है और पुरुष को स्त्रियों के मुकाबले ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। जैसे भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज है पुरुष ही परिवार का मुखिया होता है। लड़कों की शिक्षा, पालन पोषण और आजादी को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसके विपरीत लड़कियों पर बहुत सारी बंदिशें और पाबंदियाँ लगाई जाती हैं और लड़कियों को घर की चार दीवारी के अंदर रखा जाता है। लड़कियों के पैदा होने पर अफसोस किया जाता है और परिवार में लड़कों की कामना की जाती है और लड़कों के होने पर खुशियाँ मनाई जाती है। यह व्यवस्था प्रकृति ने नहीं बल्कि समाज ने बनाई है। समाज ने ही स्त्री और पुरुष के कामों को घर और बाहर के कामों में बाँटा है। इसीलिए नारीवाद पितृसत्ता समाज की आलोचना करता है। लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' की नायिका अल्मा को उसका पिता राम सिंह अपने मित्र दुर्जन के पास देखभाल के लिए भेज देता है। वहाँ दुर्जन अल्मा से कहता है-

'अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना। भला इसमें बुराई भी नहीं। हम कबुतराओं में तो यह चलन रहा है -जेवर-गहना-बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं। अब तू मेरी खरीदी हुई है।'[6]

नारी को पुरुष मात्र भोगने के वस्तु मानता आया है। उसका अस्तित्व कोई मायने नहीं रखता। उषा प्रियंवदा के उपन्यास शेषयात्रा में लेखिका का यह मानना है कि पूर्व और पश्चिम के पुरुष की वृत्ति और स्वभाव में कोई भिन्नता नहीं। नायिका अनु का मानना है कि.....'आदमी औरतों की मैरिज भी कभी मरा करती है, खास तौर से हिन्दुस्तानी मैरिज।' लेकिन डॉ. गुडमैन को यह तर्क बड़ा बेमानी लगता है। 'क्या हिन्दुस्तान में तलाक नहीं होते? क्या आदमी औरतों के शादी के बाहर प्रेम सम्बन्ध नहीं होते? आदमी का स्वभाव वही रहता है, चाहे पूरब हो या पश्चिम।'[7] इस उपन्यास की दूसरी पात्रा ज्योत्सना बेन अनु को जीवन की कटु वास्तविकता से परिचित करवाती है और खोखले मिथ्या आडम्बर से मुक्त होने को प्रेरित करती है,

'तुम अपना भला बुरा सोचो। इस लीक को क्यों पकड़े बैठी हो? अपने को गला रही हो। पर अनु अभी भी परम्परा से बंधी बैठी है।'[8]

कृष्णा सोबती के उपन्यास मित्रो मरजानी की नायिका मित्रो पुरुष के शोषण से पीड़ित है इसी कारण वह विद्रोही वृत्ति की है। मित्रो अभी तक माँ नहीं बन पाई। वह परम्परागत सामाजिक मूल्यों का प्रतिरोध करती है। समस्त आदर्शों एवं परम्परागत मूल्यों से चिढ़कर वह विद्रोह की भूमि पर नैतिकता को चुनौती देकर नई चेतना को व्यक्त करती है। वह समाज की परम्परागत मान्यताओं को खुली चुनौती देती है। उन संकुचित सामाजिक मान्यताओं का विरोध करती है,

'यह कैसा व्यापार, अपने लड़के बीज डाले तो पुण्य, दूजे डाले तो कुकर्म।'[9] मातृत्व नारी को प्राप्त प्रकृति प्रदत अवस्था है। नारी के इस स्वाभाविक गुण में उसका सृजनात्मक रुप छिपा है। प्रत्येक नारी मातृत्व प्राप्त करने के लिए सदैव लालायित रहती है, क्योंकि मातृत्व में उसकी पूर्णता विद्यमान है। 'पृथ्वी पर भगवान की स्वरुप भूता माता ही है।'[10]

कुसुम अंसल के उपन्यास अपनी अपनी यात्रा की नायिकाऐं सुरेखा, मधुर और मिन्ना समाज के सभ्य कहे जाने वाले शिक्षित वर्ग के प्रति आक्रोश प्रकट करती हैं,

'कसूर है उसके उन संस्कारों का जो उसे उबरने नहीं देते। और कसूर है उस समाज का जो नियम बनाकर हमारे सामने रख देता है -और हम पल पल मरते हुए भी उन्हीं नियमों के आगे सिर झुकाए चलते जाना चाहते हैं, चल रहे हैं।'[11]

मालती जोशी के उपन्यास 'ज्वालामुखी के गर्भ से' की मीता कहती है,

'छोटी थी मैं उस समय, पर नारी की सहज ममता ने उम्र का व्यवधान कब माना है।..उनके आँसू सोख लिए थे मैंने, उनका दर्द बाँट लिया था। तब उनकी हर व्यथा को अपने सम्पूर्ण संवेदन के साथ जीने की जैसे मेरी आदत हो गई थी। अधिकार हो गया था।..... पुरुष जब भीतर से टूटने लगता है, तो नारी का सहज स्नेह ही उसे सम्बल दे पाता है। इसी स्रोत से वह शक्ति ग्रहण करता है। नारी चाहे वह माँ हो,पत्नी हो, बहन हो मित्र हो।'[12]

भारत में पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था है, जिसमें पति ही पत्नी का भरण पोषण करता है। स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता उसे सभी तरह के उत्पीड़न, अत्याचार, शोषण सहने को बाध्य करती है कि कहीं पति उसे गृह से निष्कासित न कर दे। पुरुष अपनी शक्ति पौरुष और श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए स्त्री पर अत्याचार करता है ताकि वह उसके सम्मुख सिर न उठा सके। नारीवाद के संदर्भ में भारतीय समाज की इन परम्परागत मान्यताओं को आइना दिखाती आज की नारी अपनी शिक्षा और बौद्धिक क्षमता के साथ निखर कर अपना एक सुदृढ़ स्थान बनाने के लिए निरन्तर प्रयासरत है। वह विदेश में जाकर बसे पुरुष से विवाह कर वहाँ जाकर भी दूसरी स्त्री होने का दंश सहती हैं या अकेलेपन का शिकार होती हैं। सिम्मी

हर्षिता अपने उपन्यास 'रंगशाला' में लिखती हैं,

'जब नवविवाहिता एयरपोर्ट पर लजाई सी उतरती है तो देखती है कि उसका सपनों का खलनायक अपनी प्रेयसी के साथ उसे लेने तो आया है, पर घर पहुँचने पर कहता है हम पति पत्नी की तरह न रहकर मित्र की तरह रहेंगे ... और रहने के लिए एक कमरा उसे दे देता है।'[13]

'आज के इस दौर में स्त्री घर से बाहर के काम में भी पूर्णतः क्रियाशील हो रही है। वह आजीविका अर्जन के लिए काम भी कर रही है। परन्तु परम्परागत सोच के कारण वह घर और बाहर की चक्की के दोनों पाटों में पिस रही है। स्त्रीवादी इसे स्त्री के कंधों पर दोहरा बोझ मानतें हैं। अगर पुरुष घर का कोई काम करता है, तो बाहर का एक भी काम नहीं करेगा। घर के एक बर्तन को हाथ नहीं लगा सकता और अगर महिला बाहर का काम करती है इसके बावजूद भी उसको घर का काम करना पड़ता है। स्त्री अभी तक आश्रिता थी पर अब वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पूर्ण भागीदारी कर रही है।'[14]

गाँधी जी का कथन है : 'स्त्री और पुरुष में चरित्र की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है, क्योंकि आज भी वह त्याग, मूक तपस्या, नम्रता, श्रद्धा, और ज्ञान की मूर्ति है, पुरुष भले ही अहंकार पूर्वक यह मान ले कि स्त्री की अपेक्षा उसका ज्ञान अधिक ऊँचा है, लेकिन अक्सर स्त्री की स्वाभाविक सूझ पुरुष के इस ज्ञान से ज्यादा सिद्ध हुई है। राम से पहले सीता और कृष्ण से पहले राधा नाम का उल्लेख स्त्री चरित्र की प्रबलता का प्रतीक है।' वास्तविकता यह है कि नारीवादी विचारों का लेखा जोखा देना एक दुसाध्य कर्म है। क्योंकि निरन्तर घटित होने वाली सामाजिक घटनाएं, विभिन्न खेमों में से निकलने वाली चुनौतियाँ, इस विचारधारा को स्थिर नहीं रहने देती।

परिंदा हूँ / पर जिंदा नहीं
पंख हैं, पर उड़ान पर बंदिश
पर कतर दिए
बंद पिंजरे में कैद रखा
खोया बहुत पाया कम
जिया कम या ज्यादा .... न मालुम
पर दिया अपार
रही चट्टान सी अडिग
मैं शक्ति, मैं प्रकृति
मुझसे खिलवाड़ न करना
क्योंकि तुम जो हो
मुझ से हो, मुझी से हो।

संदर्भ सूची

1. नारीवाद, विकिपीडिया
2. स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ0 45 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
3. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ0 12 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
4. प्रतिध्वनियाँ, दीप्ति खण्डेलवाल, पृ0 79-80 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली।
5. एक पत्नी के नोट्स, ममता कालिया पृ0 50 किताबघर प्रकाशन दिल्ली।
6. अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 224 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
7. शेष यात्रा, उषा प्रियंवदा, पृ0 75 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
8. शेष यात्रा, उषा प्रियंवदा, पृ0 67 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
9. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, पृ0 74
10. कल्याण, नारी विशेषांक, पृ0 93 गीता प्रैस गोरखपुर
11. कुसुम अंसल, अपनी अपनी यात्रा, पृ0 140 सरस्वती विहार दिल्ली।
12. मालती जोशी, ज्वालामुखी के गर्भ से, पृ0 17 से 20 पराग प्रकाशन, दिल्ली।
13. सिम्मी हर्षिता, रंगशाला पृ0 9
14. स्त्री संदर्भ के बुनियादी सवाल, सं0 डॉ0 कमलेश सिंह नेगी, पृ0 111 प्रकाशक राधा पब्लिककेशन्स, दरियागंज नई दिल्ली